पद्मनन्दि पंचविंशति नाम का शास्त्र है। जो लगभग ९०० वर्ष पहले भावलिंगी मुनि-सन्त पद्मनन्दि आचार्य जंगल में बसते थे, उन्होंने जगत के हित के लिये करुणाबुद्धि से छब्बीस अधिकार किये हैं। उसमें यह एक छठवाँ अधिकार श्रावक का संस्कार का है। श्रावक जो है, उसे उपासक कहा जाता है। धर्म का सेवन करनेवाला अथवा साधु का सेवन करनेवाला, उसके संस्कार की बात इसमें आयी है न? श्रमणोपासक नहीं आता? श्रमण अर्थात् साधु, उसका उपासक अर्थात् सेवा करनेवाला। उसके नाम से पहिचाना जाए, ऐसे श्रावक के संस्कार कैसे होते हैं और उसे क्या करना चाहिए और उसका कर्तव्य क्या है, इसका वर्णन आचार्य महाराज ने किया है।

अपने १३ गाथा हो गयी है। १४वीं चलती है थोड़ी। छह आवश्यक—कर्तव्य श्रावक को होते हैं। पहले तो आत्मा का सम्यग्दर्शन पहले प्रगट करना, यह पहला उपाय है। पंचम गुणस्थान की बात है या नहीं? आत्मा पुण्य-पाप और पर से अत्यन्त भिन्न अकेला ज्ञायक चैतन्य पूर्ण आनन्दघन निधान, ऐसा आत्मा ज्ञातादृष्टा का अन्तरभान करना, पश्चात् विकल्प आदि, रागादि आवे और निमित्त की क्रिया हो, उसका भी वह ज्ञाता और दृष्टा है। ऐसे भान की भूमिका में आगे बढ़ा हुआ, सम्यग्दर्शन उपरान्त जिसे श्रावकपना अर्थात् अन्तर में शान्ति का विशेष वेदन हुआ है, चौथे गुणस्थान से अधिक। उसे ऐसे छह आवश्यक दिन-प्रतिदिन होते हैं, ऐसा यहाँ आचार्य महाराज वर्णन करते हैं। देखो! **छह आवश्यकों की महिमा का वर्णन करते हैं।**

प्रपश्यन्ति जिनं भक्त्या पूजयन्ति स्तुवन्ति ये।
ते च दृश्याश्च स्तुत्याश्च भुवनत्रये।।१४।।

जो भव्यजीव जिनेन्द्र भगवान को भक्तिपूर्वक देखते हैं... भगवान न हों, तो भगवान की प्रतिमा के दर्शन दिन-प्रतिदिन करते हैं। यह श्रावक का दिन-प्रतिदिन का कर्तव्य है। जैसे स्मरण करे भगवान का, सामायिक करे-शुभभावरूप, स्वरूप की स्थिरता सहित, वैसे यह भी एक शुभभाव हमेशा भगवान की प्रतिमा के देवदर्शन सदा करे।

दिन-प्रतिदिन आ गया है पहले। सातवीं गाथा में, **'षट्कर्माणि दिने दिने'** नरभेरामभाई! यह कल उसमें आया था। खोपकाडन है न उसमें? कहो, समझ में आया उसमें?

कोई कहता है कि भाई! यह तो पंचम गुणस्थान की बात है। परन्तु पहले श्रद्धा-ज्ञान करनेवाले को भी भगवान के दर्शन और भक्ति का भाव आये बिना नहीं रहता। संसार में कैसे आता है? स्त्री-पुत्र का मुँह देखे जल्दी सवेरे, तब इसे सन्तोष होता है। ठीक-ठाक उठे हैं। सो रहे थे, वे ठीक-ठाक उठे थे। ऐसा होता है या नहीं? भाई! हमारे यहाँ रिवाज (था), वे लोटियावोरा रहते हैं, वहाँ हमारे पालेज में। भाई! बाबूभाई! वहाँ वे नहीं? मजमूदीन नरूदीन और... वे सामने? वे सब लड़के सवेरे उठकर एक-दूसरे के सम्बन्धी हों, वहाँ काका-भाई के यहाँ जाए। ऐसा कि हम ठीक-ठाक उठे हैं तो पैर छुए। दर्शन करे, हों! माता-पिता के इसका अर्थ कि हम निरोग से सोये थे और निरोगी उठे हैं। शोभालालभाई!

मुमुक्षु : आप फिक्र नहीं करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिक्र नहीं। वहाँ हमारे नजदीक ही, दुकान के नजदीक ही वहाँ चलता था। वे लोग आवें, पैर छुएँ, हाथ चुम्बन करें। उनका पिता हो, उनका काका हो वह...

इसी प्रकार जिसे दुनिया के कुटुम्ब के दर्शन और कुशलता है या नहीं, ऐसा भाव होता है—इसी प्रकार भगवान की प्रतिमा के दर्शन करने का श्रावक को-समकिती को यह दिन-प्रतिदिन दर्शन, पूजा का भाव हुए बिना नहीं रहता। यह अनादि का मार्ग है। नरभेरामभाई! कहाँ गये जगजीवनभाई? जगजीवनभाई हैं या नहीं?

जिनेन्द्र भगवान को भक्तिपूर्वक देखते हैं और उनकी पूजा-स्तुति करते हैं। है न? **'पूजयन्ति स्तुवन्ति'** महामुनि जंगल में रहनेवाले थे ९०० वर्ष पहले। उन्होंने धर्मात्मा गृहस्थ में स्त्री हो, पुरुष हो, छोटे-छोटे बालक भी पहले तो धर्म प्राप्त करते थे। आठ-आठ वर्ष के बालक भी आत्मा का ज्ञान करके हमेशा देवदर्शन सदा करते थे। समझ में आया? यह तो स्वयं ठिकाना न हो, उसमें लड़के को कहाँ से कहे कि तू प्रतिदिन दर्शन करने जाना। मित्रसेनजी! अतः जो कोई **भक्तिपूर्वक देखते हैं और उनकी**

पूजा-स्तुति करते हैं, वे भव्य जीव तीनों लोक में दर्शनीय होते हैं। वह भविष्य में परमात्मा होनेवाला है। क्योंकि आत्मा के भानसहित भगवान की भक्ति की भूमिका में वह आया है। वह भविष्य में क्रम-क्रम से राग टालकर वीतराग होकर परमात्मा होगा। और वह परमात्मा जगत को दर्शन करनेयोग्य होगा। समझ में आया? यह शुभभाव है। यह है शुभभाव, हों! वापस इसमें कोई धर्म मान ले... (तो सही नहीं है)।

मुमुक्षु : मर्यादित शुभभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मर्यादित है। शुभभाव की हद है। तीव्र कषाय का नाश, मन्दकषायरूप भाव, ऐसा होता है। तीव्र कषाय संसार में स्त्री-पुत्र-परिवार-कमाने के लिये कैसे होता है? इसलिए ऐसा भाव उसे होता है।

कहते हैं, वह दुनिया को पूजनेयोग्य होगा तथा स्तुति के योग्य होगा। भविष्य में उसकी पूजा करेंगे, उसकी स्तुति करेंगे। **सर्व लोक उनको भक्ति से देखते हैं और उनकी पूजा स्तुति करते हैं।** यह चौथी गाथा में जरा भाई उसमें है, श्रावक का है न अधिकार? २१७, है न? चौथी गाथा है २१७ पृष्ठ। बाद के अधिकार में चौथा अधिकार।

आचार्य उपदेश देते हैं। देखो!

सम्प्राप्ते ऽत्र भवे कथं कथमपि द्राधीयसानेहसा
मानुष्ये शुचिदर्शने च महता कार्यं तपो मोक्षदम्।
नो चेल्लोकनिषेधतो ऽथा महतो मोहादशक्तेरथो
सम्पद्येत न तत्तदा गृहवतां षट्कर्मयोग्यं व्रतम्।।४।।

क्या कहते हैं? बाद के अधिकार में है, भाई! दूसरा अधिकार, भाई! शोभालालजी! यह चौथी गाथा है। चौथी है न? इसका नीचे अर्थ है। क्या कहते हैं? **अनन्त काल के बीत जाने पर इस संसार में बड़ी कठिनता से मनुष्य जन्म मिलता है।** अनन्त-अनन्त काल व्यतीत होने से मनुष्य का जन्म एकेन्द्रिय में से निकलकर, नित्य निगोद में से निकलकर एकेन्द्रियपना, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति में से निकलकर कोई प्रत्येकपना, कोई दोइन्द्रियपना, त्रीन्द्रियपना, चौइन्द्रियपना, पंचेन्द्रियपना महा अनन्त काल में मिलता है। उसमें भी अनन्त काल में मनुष्य जन्म मिलना जीव को महा कठिन

है। यह पाठ में अन्दर है, हों! पहला शब्द है न यह? **'द्राधीयसानेहसा'** भाई ने पूछा था। शब्द कुछ मिलता नहीं। **'द्राधीय'** अर्थात् दीर्घ काल इसका अर्थ। **'द्राधीयसा'** है न शब्द? अनन्त काल में मनुष्य का भव प्राप्त होना मुश्किल है।

उसमें **सम्यग्दर्शन के प्राप्त होने पर...** भगवान ने कहा हुआ आत्मा, देखा हुआ आत्मा, जाना हुआ आत्मा। ऐसे आत्मा की अन्दर में श्रद्धा और ज्ञान प्रगट करके **उत्तम पुरुषों को मोक्ष को देनेवाला तप जरूर करना चाहिए।** उसे तो मुनिपना लेना चाहिए। तप अर्थात् मुनिपना। ओहो! चारित्र जहाँ... 'कल्पवृक्ष सम संयम केरि शीतल अति शीतल ज्यां छाया, कल्पवृक्ष सम शीतल केरि अति शीतल ज्यां छाया।' संयम शान्तस्वरूप में स्थिर होकर, वीतरागी मुनि होकर चारित्र ग्रहण करना और उस प्रकार का मुनिपना अंगीकार करना, वही मनुष्यपने का सार्थक है। अनन्त काल में ऐसी देह मिली और उस समय उसे यह आवश्यक है।

यदि वह यह मुनिपना ले न सके तो लोकनिंदा से... क्या कहते हैं? पुस्तक है? नहीं। पाठ में है न उसमें भाई? **'ल्लोकनिषेधतो'** उसे ऐसा हो जाए कि यह लोग आते हैं। मैं इतना सब नग्न मुनिपना और ऐसा नहीं पाल सकता हूँ, ऐसा हूँ और **'मोहादशक्ते'** अपने में मोह की अभी इतनी असावधानी रागादि की हों, जिससे अशक्तिरूप से मुनिपना न ले सके, तो भी उसे **गृहस्थों के देव-पूजा-गुरु सेवा स्वाध्याय...** षट्कर्म शब्द पड़ा है न अन्त में? **'षट्कर्मयोग्यं'** अपने आ गया है। आठवीं गाथा में।

गृहस्थों के देव-पूजा... हमेशा भगवान परमात्मा की पूजा, उसे गुरु की सेवा, हमेशा शास्त्र का स्वाध्याय, अध्ययन और किंचित् इन्द्रियगमन आदि संयम, इच्छानिरोध आदि तप और दिन-प्रतिदिन दान, यह छह बोल हैं उसमें। उसे हमेशा करना कि जिससे **व्रत को अवश्य ही करना चाहिए।** षट्कर्म का कार्य तो अवश्य करना चाहिए। कहो, समझ में आया इसमें? सवेरे की बात की अपेक्षा यह दूसरे प्रकार की बात है। पहले एक बार नहीं कहा था? सवेरे की बात ठीक, दोपहर की यह पैसे निकालना और दान की कठिन पड़ती। तुम्हें याद किया था लोगों ने। समझ में आया इसमें?

ऐसा यह कहते हैं कि यह सवेरे की बात तो वह कि आत्मा ज्ञान, दर्शन है,

पश्चात् करने का (क्या) ? परन्तु उसमें तो राग और पुण्य-पाप के भाव भी मेरे नहीं, ऐसी दृष्टि करके उसमें एकाग्र होना, यह सम्यग्दर्शन का स्वभाव है। परन्तु इसकी भूमिका में वीतरागता आगे विशेष न हो, इससे उसे—सम्यग्दृष्टि को भी ऐसे भाव हमेशा देवदर्शन के आये बिना नहीं रहते। जानता है कि यह शुभभाव है। पाप से बचने के लिये है परन्तु ऐसे भाव पुण्य के नामस्मरण, भक्ति, स्तुति, यह सब शुभभाव है। भगवान... भगवान... अन्दर (करे), वह भी शुभभाव है। वह आये बिना नहीं रहता। पुण्य है; धर्म नहीं, हों! परन्तु ऐसा भाव धर्मी को पंचम गुणस्थान के योग्य आये बिना नहीं रहता। कहो, समझ में आया ? देव पूजा अवश्य करनी चाहिए। फिर लम्बा कथन है, वह तो ठीक। चलो। यह १४वीं गाथा।

अब अपनी यह १५वीं गाथा चलती है।

गाथा १५

ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां तेषां धिक् च गृहाश्रमम्।।१५।।

अर्थ : किन्तु जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान को भक्ति से नहीं देखते हैं और न उनकी भक्तिपूर्वक पूजा स्तुति ही करते हैं उन मनुष्यों का जीवन संसार में निष्फल है तथा उनके गृहस्थाश्रम के लिए भी धिक्कार है॥१५॥

गाथा - १५ पर प्रवचन

ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां तेषां धिक् च गृहाश्रमम्।।१५।।

देखो! आचार्य ने जंगल में रहकर करुणाबुद्धि से कहते हैं, अरे! आत्मा! **जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से नहीं देखते।** भक्ति से, हों! बेगार से नहीं। जाओ, चलो भगवान के... जाओ। नेमिदासभाई! भक्ति। ओहो! तीन लोक के नाथ परमात्मा

वर्तमान में विराजते नहीं, तो उनकी प्रतिकृति ऐसी प्रतिमा भगवान की विराजती है तो स्थापनानिक्षेपरूप से वहाँ भगवानरूप से उसे देखे। जिनप्रतिमा जिनसारखी। समझ में आया? ऐसा अनादि का विचार। सिद्धान्त में सर्वज्ञ परमात्मा से यह भाव चला आता है।

जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान की भक्ति नहीं देखते हैं और न उनकी भक्तिपूर्वक पूजा-स्तुति करते हैं। भक्तिपूर्वक! बेगार से सबके साथ चले बैठ जाएँ थोड़ी देर। उसमें बदाई जाए अर्थात् क्या कि हम भी हमेशा पूजन करते हैं। वस्त्र-फस्त्र... बदलकर बैठ जाए पूजा करने। ऐसा नहीं। भक्तिपूर्वक जो उनकी पूजा या स्तुति नहीं करता, उस मनुष्य का जीवन संसार में निष्फल है। समझ में आया?

एक व्यक्ति ने मानो पूरी मूर्ति उत्थापित कर डाली। भगवान की अनादि से चलती आयी (ऐसी परम्परा)। इस दूसरे में उसे उसमें पुण्य के बदले धर्म बता दिया। उसमें धर्म है। ऐसा नहीं। भक्ति में शुभभाव पाप से बचने के लिये भाव (आता है)। जैसे नामस्मरण शास्त्र स्वाध्याय में शुभभाव आता है, वैसा भाव आये बिना नहीं रहता। देवीलालजी! यह मानो कि ऐसे भगवान के दर्शन किये, अब अपने को हो गया धर्म। धर्म तो रागरहित आत्मा की चीज़ है, उसकी दृष्टि और अनुभव में स्थिरता करना, उसका नाम धर्म है। ऐसे धर्मी जीव के ऐसी भक्ति आदि के भाव को व्यवहारधर्म कहने में आता है। व्यवहारधर्म। अर्थात् परमार्थ से धर्म नहीं परन्तु पुण्य है। ऐसे भाव नहीं करता, भक्ति से पूजता नहीं, यह **'निष्फलं जीवितं तेषां'** उसका जीवत्व इस जगत में निष्फल है।

यह तो ठीक परन्तु **'तेषां धिक् च गृहाश्रमम्'** उसके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है। उसे पानी में डुबो दे। आता है कहीं। कहाँ आता है? ऐ! किस जगह आता है? यहाँ सब कहीं याद है, कहीं आता है। ऐसा गृहस्थाश्रम जिसमें भक्ति, पूजा और दानादि न वर्तते हों, ऐसे गृहस्थाश्रम को पानी में डालकर अंजुली देना। स्वाहा। डुबो देना। ऐसे गृहस्थाश्रम का काम क्या, ऐसा कहते हैं। उसमें अंजुली दे देना। यह मरते हुए अंजुली नहीं देते? लो, यह ... यह दिया। ऐसा वहाँ है। कहीं दान के अधिकार में है। अब कहीं सब अभी ख्याल में होता है? कहो, समझ में आया?

इसलिए कहते हैं कि ऐसे गृहस्थाश्रम को धिक्कार... धिक्कार है। आहाहा! यह

लड़के का मुँह देखे, स्त्री का मुँह देखे तो इसे अच्छा लगे। समझ में आया? अभी तो विवाह-विवाह करना हो तो लड़की को देखने जाते हैं अभी तो। सब कैसा है। बुलावे-हिलावे, साथ में घूमे, दो घण्टे, उसके साथ बराबर ठीक है या नहीं। तुमको मैं पसन्द हूँ या नहीं, उसे कहे मैं पसन्द हूँ या नहीं? तब तो यह विवाह करे। ऐसे तो अभी के ढोंग चले हैं।

यहाँ भगवान पसन्द है या नहीं उनके दर्शन? आहाहा! समझ में आया? परमात्मा वीतराग मुद्रा शान्त, जिन्हें देखने से मानो तीन काल, तीन लोक के ज्ञाता-दृष्टा हैं। राग की क्रियामात्र जिन्हें नहीं है। स्थिर हो गये। उनका प्रतिबिम्ब देखता है। आहाहा! लोकालोक तीन काल, तीन लोक के जाननेवाले-देखनेवाले। चाहे जो दुनिया में हों, जिन्हें विकल्प नहीं, कम्पन और अस्थिरता नहीं। ऐसा बिम्ब देखकर जिसे ज्ञान में भास हो, उसे भक्ति और उल्लास से शुभभाव आये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

उसके गृहस्थाश्रम के लिये भी धिक्कार है। एक तो निष्फल कहा। निष्फल इतना नहीं रखा...

मुमुक्षु : दान अधिकार की २४वीं गाथा में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : २४, हाँ। यह २४ में है। देखो, २४वीं गाथा है। दान के अधिकार में पृष्ठ १२२। उसमें दान का अधिकार होगा पहले।

पूजा न चेज्जिनपतेः पदपङ्कजेषु
दानं न संयतजनाय च भक्तिपूर्वम्।
नो दीयते किमु ततः सदनस्थितायाः
शीघ्रं जलाञ्जलिरगाधजले प्रविश्य।।२४।।

क्या कहते हैं? **जो गृहस्थाश्रम में जिनेन्द्र भगवान की चरणकमलों की पूजा नहीं है...** संसार में भी अच्छा करोड़पति घर में आवे तो कहे, अहो! आज मेरे सोने का सूरज उगा, आज मेरा आँगन उज्ज्वल हुआ। ऐसा नहीं बोलता? वह तो राग है। वहाँ तो पाप है। यह तो शुभभाव, जिनेन्द्र भगवान के चरणकमल की पूजा नहीं, **भक्तिभाव से संयमीजनों के लिये दान नहीं...** जिसके घर में धर्मात्मा आवे, उन्हें भक्ति से दान

नहीं देता, **नहीं दिया जाता आचार्य कहते हैं। अत्यन्त गहरे जल में...** गहरे पानी में जाकर **प्रवेश करके गृहस्थाश्रम के लिये जल की अंजुली दे देनी चाहिए।** शोभालालजी! कहते हैं, डुबो दे तेरे घर को, तू डूबा पड़ा है। ऐई! देवीलालजी!

दान-पूजा बिना गृहस्थाश्रम किसी काम का नहीं। दान-पूजारहित। **इसलिए गृहस्थाश्रम में रहकर भव्य जीवों को दान देना चाहिए।** अंजुली में प्रवेश... यह तो आचार्य ने एक उल्हाना (दिया है)। ठपका को क्या कहते हैं? ओलम्बो कहते हैं न? ओणम्बो दिया है। अरे! तेरे घर में भगवान के दर्शन नहीं और वहाँ मुनियों को, धर्मात्मा आदि को दान नहीं, उस तेरे घर के गहरे पानी में लेकर अंजुली दे। अर्थात् डुबो दे, तेरा गृहस्थाश्रम डुबोने के योग्य है। ताराचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु : ... तेरा घर श्मशान समान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्मशान समान है। जहाँ महाधर्मात्मा जीव के चरण नहीं, देवदर्शन की जहाँ महिमा नहीं, भक्ति नहीं, पूजा नहीं, उस गृहस्थाश्रम को क्या करना? आचार्य मुनि जंगल में रहकर जगत की करुणा करते हैं। नरभेरामभाई!

एक तो मानो सम्प्रदाय में मूर्ति नहीं थी। मूर्ति की पूजा नहीं। यहाँ आये, इसलिए उस मूर्ति की पूजा का भक्तिभाव नहीं होता उन्हें, उत्साह नहीं आता। एक व्यक्ति कहता है, उत्साह नहीं आता। परन्तु संसार के भाव देखकर, कुटुम्ब को, स्त्री को देखकर क्यों उसका आनन्द होता है? उसी प्रकार ऐसा भाव गृहस्थाश्रम में हमेशा परमात्मा त्रिलोकनाथ कहीं भावनिक्षेप से विराजते हैं, उनकी स्थापनानिक्षेप के भी ज्ञानी विरह से... स्त्री का फोटो नहीं करता?

एक बार पोरबन्दर में कहा था, याद है? देवीदास या क्या नाम? जमुनादास। उपाश्रय के साथ में मकान था। पश्चात् उन्हें ... भाव था। कहा, देखते हैं एकान्त होवे तो। वहाँ एक बड़ा फोटो और वस्त्र ढाँका हुआ। मैंने कहा यह किसका फोटो है? कहे, पुरानी स्त्री मर गयी, उसका फोटो है। ....भाई! पुरानी स्त्री मर गयी, उसका बड़ा फोटो था। जमुनादास खुशाल। उपाश्रय के साथ में। (संवत्) १९८७ के वर्ष की बात है, ८७। ३३ वर्ष (हुए)। कहा, यह? कहे, यह फोटो जरा नजर पड़े, तब पुरानी स्त्री याद आवे

तो मजा आवे। फोटो देखे तब। समझ में आया? ऐ! भगवान का फोटो और भगवान का दर्शन कुछ है?

यहाँ आचार्य कहते हैं कि अनादि का रिवाज (है कि) श्रावक के घर में मन्दिर के दर्शन और दानादि का भाव हमेशा उसे होना चाहिए। समझ में आया? कहते हैं, ऐसे गृहस्थाश्रम को क्या करना है? ऐसा कहते हैं। धिक्कार है, कहते हैं।

१६वीं गाथा।

गाथा १६-१७

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं देवतागुरुदर्शनम्।
भक्त्या तद्वन्दना कार्या धर्मश्रुतिरुपासकैः।।१६।।
पश्चादन्यानि कार्याणि कर्तव्यानि यतो बुधैः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामादौ धर्मः प्रकीर्तितः।।१७।।

अर्थ : भव्य जीवों को प्रातः काल उठकर जिनेन्द्रदेव तथा गुरु का दर्शन करना चाहिए और भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना-स्तुति भी करनी चाहिए और धर्म का श्रवण भी करना चाहिए, इनके पीछे अन्य गृह आदि संबंधी कार्य करने योग्य है क्योंकि गणधर आदि महापुरुषों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - इन चार पुरुषार्थों में धर्म का ही सबसे प्रथम निरुपण किया है तथा उसी को मुख्य माना है॥१७॥

गाथा - १६-१७ पर प्रवचन

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं देवतागुरुदर्शनम्।
भक्त्या तद्वन्दना कार्या धर्मश्रुतिरुपासकैः।।१६।।
पश्चादन्यानि कार्याणि कर्तव्यानि यतो बुधैः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामादौ धर्मः प्रकीर्तितः।।१७।।

यह पाप के परिणाम और संसार की अपेक्षा यह धर्म अर्थात् पुण्य, व्यवहारधर्म की बात यहाँ चलती है।

भव्य जीवों को प्रात:काल उठकर जिनेन्द्रदेव और गुरु का दर्शन करना चाहिए। धर्मात्मा के दर्शन करना चाहिए। **और भक्तिपूर्वक उनकी वन्दना-स्तुति भी करनी चाहिए।** प्रेम से, आदर से। ओहो! धन्य धर्म के धारक धर्मात्मा! उनके बहुमान से बहुप्रीति से उनकी वन्दना और स्तुति करना चाहिए। **और धर्म का श्रवण भी करना चाहिए।** धर्मात्मा के हमेशा दर्शन करके फिर धर्म का श्रवण करना चाहिए। यह पहले करना चाहिए और पश्चात् दुकान के काम करना, ऐसा यहाँ कहने में आता है। समझ में आया? बाद में करेंगे। लो, समय मिलेगा तो करूँगा। क्यों लड़के! सब्जी-बब्जी ले आया। अब कुछ काम नहीं है न? तो अब निवृत्त होऊँ तो जाऊँ। कामकाज होवे तो अभी नहीं। नम्बर रखना अन्तिम। तेरा अन्तिम नम्बर होगा या उसका? देवीलालजी! कहते हैं कि भगवान के दर्शन और गुरु के दर्शन, साधर्मी का संग और उनका श्रवण-मनन हमेशा उसे करना चाहिए।

धर्म का श्रवण भी करना चाहिए। इनके पीछे अन्य गृह आदि संबंधी कार्य करने योग्य है। पाठ है। **'पश्चादन्यानि कार्याणि'** समझ में आया? पहला यह समागम धर्मात्मा का। देखो न, यह मूलजीभाई को रोग आया। मूलजीभाई को, राजकोट। अन्तिम मरने का। मूलजीभाई थे न? राजकोट। नहीं? लाखाणी थे। अपने यहाँ आते थे। अपने यहाँ सेक्रेटरी थे। अन्तिम रोग आया मरने का। कल तो अटेक आया था। आज देह छूट जाएगी। वैसे तो गृहस्थ व्यक्ति थे। गृहस्थ, पैसा बहुत है। बुलाओ डॉक्टर को। वह कहे, नहीं। बुलाओ लालचन्दभाई को। शोभालालभाई! लालचन्दभाई हैं न अपने। गृहस्थ व्यक्ति है। लड़के पैसेवाले और सब गृहस्थ। स्वयं ने कहा, आज नहीं निभ सकूँगा। आज स्थिति ऐसी है। अटेक आया। वह क्या कहलाता है? हार्ट में। हार्ट में अटेक। तीस हजार पहले दिये थे। मरने के बाद चालीस हजार दे गये। इस समवसरण में चालीस हजार रुपये (दिये)। परन्तु वह देह आज छूट जाएगी। निश्चित हो गया। सवेरे। वहाँ लोग एकदम आये। बुलाओ डॉक्टर को। बुलाओ लालचन्दभाई को। डॉक्टर नहीं, पहले लालचन्दभाई को बुलाओ। लालचन्दभाई मुझे धर्म सुनावें। ऐसी वेदना में

भी... नहीं, पहले यह सुनाओ। ख्याल है कि यह वेदना उठी है। फिर वापस ठीक होऊँगा। वापस शाम को उठा, दोपहर को तब समाप्त।

लालचन्दभाई ने यहाँ तक कहा कि यह देह की वेदना आत्मा में ज्ञात होती है। देह का धर्म आत्मा में ज्ञात होता है। देह में रोग हो, वह आत्मा में नहीं है। यह आत्मा देह के रोग को जानता है। तब कहते हैं कि क्या देह के रोग को आत्मा जानता है? आत्मा, आत्मा को जानता है। समझ में आया? एक ऐसा गृहस्थ व्यक्ति धनाढ्य। (संवत्) १९७६ के वर्ष से पैसावाला कहलाये। यह सब पैसेवाले बाद में हुए, हों! यह लोग पन्द्रह-सोलह लाख रुपये, ७६ के वर्ष में दोनों भाई मुम्बई से ले आये थे। परन्तु उस समय के पैसेवाले, परन्तु बहुत लम्बा किया नहीं। तो ऐसा का ऐसा रहा... क्योंकि हम तो ७६ से जानते हैं न। परन्तु अन्त में ऐसा बोले तो इतना। नरभेरामभाई! यह कहीं रटने से नहीं होता, वहाँ तैयारी चाहिए। उन्होंने ऐसा कहा। इतनी तो उनकी पुरुषार्थ की... देवीलालभाई! उन्होंने-लाचन्दजीभाई ने कहा कि भाई! यह रोग है, उसे आत्मा जानता है, हों! यह रोग हो, यह होता है। क्या आत्मा रोग को जानता है या अपने को जानता है? ज्ञान, ज्ञान को जानता है, रोग को नहीं। ऐई! धन्नालाल! ऐसी अन्तिम स्थिति। इस ओर का होता है न, हार्ट यहाँ का होता है न। यहाँ से पीड़ा उठी। इतनी इस पुरुषार्थ की जागृति इस मरने के समय। पहले लाओ, दूसरा नहीं। धर्म श्रवण करानेवाले को लाओ। रोग-वोग होना होगा, वह होगा।

यहाँ कहते हैं, भव्य जीवों को... ऐ... नरभेरामभाई! ऐसे समय वापस वह याद आवे, हों! उसका क्या किया? उसका क्या हुआ? तब उसकी सम्हाल करता जाए, उसे देता जाए। पूरे दिन यह संकल्प-विकल्प होवे तो मरते हुए वह याद आयेगा। जिसे अन्दर के धर्म... देखो! सवेरे उठकर भगवान की वन्दना-स्तुति करना चाहिए। धर्म का श्रवण करना चाहिए। बेगारी नहीं कि यह सब जाते हैं, इसलिए अपने चलो, नहीं तो अच्छा नहीं लगेगा। यह पर्यूषण में नहीं सुनेंगे तो अच्छा नहीं लगेगा। वह तो बेगार है। समझ में आया? चलो गृहस्थ आते हैं बड़े-बड़े, चलो भाई, अपन सुनने। अन्दर सुनने का कुछ ठिकाना नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं, धर्म का श्रवण भी प्रेम से करना चाहिए। **पश्चात् अन्य गृह**

आदि सम्बन्धी कार्य करने चाहिए। है न ? कहो, समझ में आया ? गृह आदि अर्थात् ? गृहस्थाश्रम के अथवा दुकान के, व्यापार के बाद याद करना। यह तो उससे पहले याद भी करना नहीं, पहले यह याद करना। **क्योंकि गणधर आदि महापुरुषों ने...** गणधर आदि महापुरुषों ने **धर्म...** अर्थात् पुण्य, **अर्थ...** अर्थात् लक्ष्मी और **काम...** अर्थात् भोग **मोक्ष...** अर्थात् निर्मलता। **इन चार पुरुषार्थों में गृहस्थ के लिये पाप की अपेक्षा से धर्म का सबसे प्रथम निरूपण किया है।** मोक्ष तो उत्कृष्ट बात है, परन्तु पाप से बचने को धर्म का अर्थात् पुण्य का, व्यवहारधर्म की उसे मुख्यता होती है। **उसी का मुख्यपना है।** लो! यह देव पूजा की व्याख्या की।

छह आवश्यक में दिन-प्रतिदिन एक देव पूजा इसे करना चाहिए, यह श्रावक का दिन-प्रतिदिन का उसका कर्तव्य है। समझ में आया ? बहुत वर्ष पहले (संवत्) १९८२ में यह बात हुई थी। एक व्यक्ति कहे, महाराज! यह क्या है इसमें मूर्ति का ? देख भाई! कहा, शास्त्र में मूर्ति और पूजा सब है। ८२ के वर्ष की बात है। वे नहीं थे ? भाई! वे। .... वढवा रहते थे। मणिलाल। मणिलाल सुन्दरजी। मणिलाल सुन्दरजी। मणिलाल आये थे ८२ में। वढवाण में। सुन्दरवाला के उपाश्रय में रात्रि में आये और बात की। मैंने कहा, देख भाई! शास्त्र में प्रतिमा और पूजा है। वीतराग में कहे हुए शास्त्र में है परन्तु ऐसा हुआ कि जो पूजा अन्दर में लिखी है। उसने डाला कि वे सौ के एक पिता ने दूसरे के पिता को सौ रुपये दिये। सौ दिये थे। सौ ऊपर-ऊपर लिखे थे। फिर वे पिता मर गये। मेरे पिता ने तेरे पिता को दस हजार दिये हैं। दिये थे सौ, परन्तु दो शून्य चढ़ाकर माँगे। वह कहे, भाई बहियों में देखूँगा। नवनीतभाई! बहियों में देखा, सौ तो सच्चे लगते हैं। सौ स्वीकार करने जाऊँगा तो वह दस हजार माँगता है। देखा बहियों में, नहीं है। समझ में आया ?

उसी प्रकार एक व्यक्ति ने जब भगवान की मूर्ति को... चाँदी और सिर पर ऐसे चढ़ा दिये कि राजा का वर्णन जैसा लगता है। भोग और सब ऐसा। ऐसा कहे कि भाई! शास्त्र में मूर्ति है परन्तु यदि हाँ करने जाएगा तो... माँगेगा। देखा सही शास्त्र में कि मूर्ति पूजा है। उसने सौ दिये थे, सौ भी नहीं है, ऐसा कह दिया। उसमें चढ़ाई दो शून्य अधिक।

दस हजार। उसने बढ़ा दिया। उसने मिटा दिया। समझ में आया? यह ८२ के वर्ष में (बात हुई थी) ३८ वर्ष हुए।

एक व्यक्ति ने अधिक माँगा कि ऐसे भगवान ऐसे होते हैं और उनके सिर पर मुकुट होता है और उनके सिर पर यह होता है। फल और फूल और पूजा बहुत अमुक। इतना बढ़ा दिया कि मूर्ति मानी। मास्टर! तुमने ऐसे चढ़ा दिया। तुमने अर्थात् पूर्व की अपेक्षा में। तब उसने निकाल दिया मूल में से कि है नहीं मूर्ति और पूजा शास्त्र में। अरे! अनादि की है। देखा सही। है अवश्य। परन्तु यदि इतना स्वीकार करने जाऊँगा तो गले पड़ेंगे। मनसुखभाई! इसलिए मूल में से निकाल डाला। अनादि की पूजा और मूर्ति है। सन्त मुनि तो भावपूजा करते हैं, गृहस्थ भी महा चक्रवर्ती जैसे भरत चक्रवर्ती विशाल पूजा इतनी करते हैं कि लाखों-करोड़ों का खर्चा हो वहाँ। उस पूजा के नाम चले हैं। क्या कहलाता है? कल्पद्रुम और ऐसा। कल्पद्रुम पूजा बड़ी पूजा है। बड़ी। पुत्र का विवाह हो, तब कैसे पचास हजार और लाख खर्च कर डालता है। मारवाड़ में बहुत तूफान होता है। ताराचन्दजी! लड़के या लड़की का विवाह हो, तब साधारण मनुष्य है, तब उसे पाँच-दस लाख, बीस लाख, पच्चीस लाख का आसामी हो, उसे लाख खर्च करने पड़ते हैं। ढोंग-ढोंग का पार नहीं होता। वहाँ बहुमान कैसे करता है? यहाँ भगवान के दर्शन और भक्ति में (जाना हो तो कहे), मुझे समझ नहीं मिलता। हमें मरने का समय नहीं है। अभी मर जाएगा, तब तो पड़ा रहेगा एक ओर। सुन न!

यहाँ कहते हैं, सब संसार के पाप के (समय में भी) अन्दर में भगवान के दर्शन आदि को मूल धर्म, मुख्य व्यवहार के धर्म की यहाँ बात चलती है, पुण्य तो पाप की अपेक्षा मूर्ति गिनने में आया है।

अब गुरु की सेवा। दूसरा बोल। हमेशा गुरु की भक्ति।

गाथा १८

गुरोरेव प्रसादेन लभ्यते ज्ञानलोचनम्।
समस्तं दृश्यते येन हस्तरेखेव निस्तुषम्।।१८।।

अर्थ : जिस केवलज्ञानरूपी लोचन से समस्त पदार्थ हाथ की रेखा के समान प्रगट रीति से देखने में आते हैं ऐसा ज्ञानरूपी नेत्र निर्ग्रन्थ गुरुओं की कृपा से ही प्राप्त होता है, इसलिए ज्ञान के आकांक्षी मनुष्यों को भक्तिपूर्वक गुरुओं की सेवा, वंदना आदि करनी चाहिए॥१८॥

गाथा - १८ पर प्रवचन

गुरोरेव प्रसादेन लभ्यते ज्ञानलोचनम्।
समस्तं दृश्यते येन हस्तरेखेव निस्तुषम्।।१८।।

देखो! निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बतलाना है न? यहाँ व्यवहार का बतलाना है। उसमें कहे, भाई! तू तेरा है और तुझसे तुझे ज्ञान होता है। यह निश्चय भी बाद में वापस यह (ही होता है)। समझ में आया?

जिस केवलज्ञानरूपी लोचन से समस्त पदार्थ हाथ की रेखा के समान... यह हाथ में रेखा है। वह ऐसे मानो कि तीन काल, तीन लोक (एक समय में जाने), ऐसा जो केवलज्ञान, **प्रगट रीति से देखने में आता है। ऐसा ज्ञानरूपी नेत्र निर्ग्रंथ गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। 'प्रसादेन'** शब्द पड़ा है न? निर्ग्रन्थ गुरु, सन्त, मुनि। मुख्यता तो उनकी है न, चारित्रवन्त, रागरहित, नग्न-दिगम्बर, भावलिंगी सन्त जंगल में (बसनेवाले)। ऐसे निर्ग्रन्थ गुरु की कृपा से प्राप्त होते हैं।

आता है न? भाई! यह नहीं? आत्मावलोकन में। आत्मावलोकन में आता है कि वीतराग... वीतराग... गुरु वीतराग होने का आराधन करते हैं। गुरु उन्हें कहते हैं कि पुण्य और पाप के विकल्प हों, तथापि आराधन वीतरागपने के स्वभाव का करते हैं। और जगत में निर्ग्रन्थ मुनि उपदेश देते वीतराग... वीतराग... (होने का उपदेश देते)। मुहु

मुहु ऐसा पाठ वहाँ आत्मावलोकन में है। उसके मुख में तो वीतरागता का ही झरना झरता है। रागरहित भगवान आत्मा की दृष्टि करो, उसका ज्ञान करो, उसमें रमणता करो। वीतरागपने के भाव की ही बात करते हैं। गौणरूप से राग आवे, उसकी बात करते हैं परन्तु मूल बात यह करते हैं। श्रावकों को यह समझाते हैं। ...चन्दजी! आत्मावलोकन है, दीपचन्दजी का बनाया हुआ। दीपचन्दजी ने यह अनुभवप्रकाश, चिद्विलास बनाया है या नहीं? उनका आत्मावलोकन है। उसमें यह दोहा है। समझे न? उसमें तो वीतराग मुहु मुहु।

मुमुक्षु : वह कहीं आधारभूत कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! आधार प्रमाणभूत है। आधारभूत क्या, वीतरागभाव, वह वीतराग कहते हैं या दूसरा कहता है? सर्वज्ञ परमात्मा ने तो वीतरागभाव की भी व्याख्या की है। उसमें यह रागादि चरणानुयोग की पद्धति में बतलाया, किया,—ऐसा कहने में आता है परन्तु तात्पर्य क्या है? राग, यह हो, वह पाप से बचने को आता है। उसका अभाव करके भी वीतरागचारित्ररूप से जा तो तेरा कल्याण होगा। समझ में आया? इसी प्रकार सन्तों की गुरु की वाणी में वीतरागता का ही घोलन होता है। घोलन और वीतरागता का ही उपदेश वे देते हैं।

मुमुक्षु : यह तो 'गुरुदेव' आपकी वाणी में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? यह पाठ लिया है, हों! वहाँ। श्लोक बनाये हैं। किसने बनाये हैं, यह खबर नहीं।

'गुरोरेव प्रसादेन लभ्यते ज्ञानलोचनम्' कैसा ज्ञान? **'समस्त दृश्यते'** लोकालोक जाने, ऐसा केवलज्ञान, जिसमें पूर्णानन्द पड़ा है, वह गुरु के प्रताप से मिलता है। **कृपा से प्राप्त होता है। इसलिए ज्ञान के आकांक्षी...** इस सम्यक् केवलज्ञान की आकांक्षा है, वीतरागभाव के साथ में परमानन्द और केवलज्ञान की अभिलाषा **ऐसे मनुष्यों को भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा वन्दना आदि करनी चाहिए।** भक्तिपूर्वक उसे श्रवण करना चाहिए। समझ में आया? है न? **'गुरोरेव प्रसादेन' 'हस्तरेखेव निस्तुषम्'** अखण्ड पूर्ण वस्तु केवलज्ञान में दिखती है। ऐसे केवलज्ञान की जिसे भावना, आकांक्षा है, उसे धर्मात्मा की भक्तिपूर्वक सेवा आदि करना। कहो, यह समझ में आया? वह भी दिन-प्रतिदिन

का कर्तव्य है। घर के बुजुर्गों को ऐसे प्रतिदिन चरणवन्दन करता है और उनका बहुमान करता है ? समझ में आया ? देखो ! सेठिया का घर देखो। सरदारशहर। जा आये हैं न ! जा आये हैं। भाई साथ में नहीं थे ? यह शोभालालजी !

घर में सवेरे उठे। तीस व्यक्ति घर में। सवेरे उठें। पहले भगवान के दर्शन करे, एक-दूसरे के दर्शन करे और बड़े के दर्शन करे। सुख से... उसके घर की बात भी कहीं अलग है। अभी हिन्दुस्तान में नहीं है। समझ में आया ? सवेरे से शाम तक। देखा या नहीं ? राजमलजी ! सवेरे उठे (तब) बोले वह। अपने को तो आता नहीं। हिन्दुस्तान का गायन बोले। सबके दर्शन करके फिर, सेवा करके वाँचन करे और सुने। फिर आहार करने का अवसर हो, तब वह गायन भी उस प्रकार का, हों ! ऐसा गायन गवावे। आनन्द के अमृत के भोजन करने को... ऐसी कुछ उसकी भाषा है। ऐसा बोले, तब सब आहार करने एकत्रित हो। आहार करके वापस ऐसा भजन बोले। यह तो पूरे दिन भजन की मण्डली देखना। सवेरे से शाम तक। रात्रि में सोते समय भी वापस सब आकर कैसे है ? किसी को बोलचाल हुई नहीं घर में ? सेठिया पूछे। घर में छह तो बहुएँ हैं, पाँच लड़के और लड़के के लड़के की बहू बड़ी गृहस्थ। तेरापंथी की बड़ी गृहस्थ और छह बहुएँ, छह लड़के, उनके लड़के, बड़ा परिवार। किसी की बोलचाल हुई है ? अरे ! पिताजी ! किसी को कुछ हुआ नहीं। हम शान्ति में (हैं)। किसी ने किसी को कडवा वचन नहीं कहा, आपके प्रताप से आपके घर में रहे हैं। हमें किसी के साथ हुआ नहीं। धन्नालालभाई ! आहाहा ! कोई दूसरी महिलाओं में, बहुरू में। बहुरू समझ में आता है न ? कड़क भाषा बोली गयी हो, किसी को ठीक न लगता हो। मेरे पास ला। पिताजी ! आपके घर में हम आये, हम महाभाग्यशाली हैं। वह यहाँ बहिन कहती थी। वे बहिनें आयीं थी बड़े गृहस्थ की लड़कियाँ, उनके लड़के की बहुएँ वे कहती थी। अहो ! हम यह पिताजी... पिताजी... कहलाये न ससुर से इसलिए। और वे तेरापन्थी की लड़कियाँ। वे जो दया-दान में, पर को बचाने का भाव पाप है, (ऐसा माननेवाले) परन्तु यह सुनकर अहो ! हम पिताजी के घर में आये, महाभाग्य ! हमें यह धर्म सुनने को मिला। नवनीतभाई ! ऐसा बोले।

उनके घर में ऐसी प्रथा। एक लड़का ढाई वर्ष का था। फिर कहे कि मुझे महाराज के दर्शन करने जाना है। वहाँ नहीं जाया जाता सोनगढ़। सोनगढ़ नहीं जाया जाता। वहाँ

बहुमान, भक्ति विनय बिना नहीं जाया जा सकता। आहाहा! एक बार लड़का बोला। समझ में आया? 'हम महावीर भक्त आये, तुम क्या करेगा हमको।' चलो भाई अब वहाँ। नरभेरामभाई! यह लड़के के संस्कार। वह कमाता न हो तो कहे बैठना कमाने। यह धर्म में व्यर्थ का समय जाता है। अमुक के लिये थोड़ा कमा, सब बहियाँ फिरा। अब वह तो होना होगा, वह होगा। वहाँ चिन्ता कराने का कहे बारम्बार। यह नहीं।

यहाँ कहते हैं, गुरु की सेवा करके उन्हें बारम्बार भक्ति से वापस श्रवण करे। बड़े क्या कहते हैं? धर्मात्मा जीव क्या कहते हैं, उन्हें बारम्बार भक्ति से करे। लो, १८वीं गाथा। अभी गुरु सेवा की बात है, हों!

१९वीं।

गाथा १९

ये गुरुं नैव मन्यन्ते तदुपास्तिं न कुर्वते।
अन्धकारो भवेत्तेषामुदिते ऽपि दिवाकरे।।१९।।

अर्थ : जो मनुष्य, गुरुओं को नहीं मानते हैं और उनकी सेवा वंदना नहीं करते हैं, उन मनुष्यों के लिए सूर्य के उदय होने पर भी अंधकार ही है॥१९॥

गाथा - १९ पर प्रवचन

ये गुरुं नैव मन्यन्ते तदुपास्तिं न कुर्वते।
अन्धकारो भवेत्तेषामुदिते ऽपि दिवाकरे।।१९।।

जो मनुष्य गुरुओं को नहीं मानते हैं... वापस कितने ही ... मुनि न हों और मुनिपना मनावे। लो, हमको तो मानते नहीं। भाई! यहाँ तो मुनि और सच्चे सन्त की बात है। अथवा सच्चे धर्मात्मा की बात है। **जो मनुष्य गुरुओं को नहीं मानते हैं और उनकी सेवा-वन्दना नहीं करते हैं, उन मनुष्यों के लिए इस सूर्य के उदय होने पर भी अन्धकार ही है।** अन्धकार, उनके घर में तो अन्धकार ही अन्धकार है। अन्धा का अन्धा

है। अन्धा है, कहते हैं। जिसके घर में गुरु की सेवा नहीं, गुरु का श्रवण नहीं... समझ में आया? है न **'अन्धकारो भवेत्तेषामुदिते ऽपि दिवाकरे'** दिवाकर—सूर्य उगा है (परन्तु) तेरे घर में तो अन्धकार है। धर्मात्मा आये और उनका आदर, सत्कार, बहुमान नहीं करता। धर्मात्मा के दर्शन नहीं करता और इस प्रमाण अन्धकार तेरे घर में वर्तता है, ऐसा कहते हैं।

जो मनुष्य परिग्रह रहित और ज्ञान-ध्यान-तप में लीन गुरुओं को नहीं मानते... मूल तो मुनि की बात है। चारित्रवन्त मुनि, धर्म जिनका लिंग है। बाह्य जिसका नग्न लिंग है। अन्तर में भावलिंग है, जिनके अनुभव की दृष्टिपूर्वक शान्ति और आनन्द में झूलते हैं। वन में बसते हैं, वे किसी समय गाँव में आ चढ़ें। तो कहते हैं, ऐसे परिग्रहरहित **ज्ञान-ध्यान-तप में...** तप अर्थात् मुनिपना, हों! **लीन गुरुओं को नहीं मानते, उनकी उपासना भक्ति आदि नहीं करते हैं, उन पुरुषों के अन्तर में अज्ञान रूपी अन्धकार सदा विद्यमान रहता है।** कहो, समझ में आया? **इसलिए सूर्य के उदय होने पर भी वह अन्धे ही बने रहते हैं।** लो!

भव्य जीवों को चाहिए कि अज्ञानरूपी अन्धकार के नाश करने के लिये गुरुओं की धर्मात्मा की सेवा करे। दिन-प्रतिदिन की बात है, हों! पहले आ गयी थी न गाथा? कौन सी, छठवीं? सातवीं-सातवीं। सातवीं गाथा। दिन-प्रतिदिन। **'देवपूजा गुरुपास्ति'** सातवीं गाथा है। **'स्वाध्यायः संयमस्तपः। दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने।'** हमेशा। एक दिन गया और फिर कुछ नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया या नहीं?

मुमुक्षु : किसी दिन न जाए तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : अब एक दिन की कहाँ लगायी है। यहाँ तो दिन-प्रतिदिन की बात है। एक दिन किसी को हुण्डी बतानी है? लो, यह मैं आया था। अब उस दिन नहीं आया था? तुम कहते थे और मैं नहीं आया था? तो क्या हुण्डी बतानी है? अपने भक्तिभाव से भगवान के संग का दर्शन और गुरु का दर्शन हमेशा दिन-प्रतिदिन करे, उसका नाम गृहस्थाश्रम का श्रावकपना कहा जाता है। नहीं तो कहते हैं कि इस गृहस्थाश्रम को पानी में डुबो दे। गहरे जल में। तेरे आत्मा को कुछ लाभ नहीं है, वह गृहस्थाश्रम किस काम का?

अब स्वाध्याय। प्रतिदिन की स्वाध्याय, हों! बहियाँ कैसे प्रतिदिन फिराता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वकील भी पन्ने फिराता है। यह कायदा... और यह कायदा... इस कायदा की बात है न। परन्तु उन कायदा के फिराता है या नहीं? इसी प्रकार ये धर्मात्मा के शास्त्र जो हैं, उन्हें बारम्बार इसे वाँचन और मनन करना चाहिए। प्रतिदिन करना चाहिए। ऐसा नहीं कि एक दिन पढ़ा था। हाँ, उस दिन मैंने एक बार पढ़ा था। एक व्यक्ति को पूछा, समयसार पढ़ा? बहुत वर्ष पहले एक बार पढ़ा था। ओहो! बाद में? कहा, समय नहीं मिलता।

यहाँ कहते हैं, तीसरा स्वाध्याय कर्तव्य प्रतिदिन का है। गृहस्थाश्रम में समकिती को, श्रावक को धर्मात्मा का स्वाध्याय वह प्रतिदिन का दिन-प्रतिदिन का कर्तव्य है।

गाथा २०

ये पठन्ति न सच्छास्त्रं सद्गुरुप्रकटीकृतम्।
तेऽन्धाः सचक्षुषोऽपीह संभाव्यन्ते मनीषिभिः।।२०।।

अर्थ : जो मनुष्य उत्तम और निष्कलंक गुरुओं से प्रगट किये हुए शास्त्र को नहीं पढ़ते हैं उन मनुष्यों को विद्वान पुरुष नेत्रधारी होने पर भी अन्धे ही मानते हैं ॥२०॥

गाथा - २० पर प्रवचन

ये पठन्ति न सच्छास्त्रं सद्गुरुप्रकटीकृतम्।
तेऽन्धाः सचक्षुषोऽपीह संभाव्यन्ते मनीषिभिः।।२०।।

ओहोहो! आचार्य करुणा करके कितनी मीठी भाषा से बात करते हैं! **जो मनुष्य उत्तम निष्कलंक गुरुओं से... 'सद्गुरु'** शब्द है न? **'सद्गुरु'** सच्चे ज्ञानी के कहे हुए। यद्वा-तद्वा शास्त्र नहीं। यद्वा-तद्वा पढ़े अभी तो जो ... लेखन का पार नहीं होता, पुस्तकों

का पार नहीं होता। चाहे जो पढ़ने बैठ जाता है। नहीं। **'सच्छास्त्रं सद्गुरुप्रकटीकृतम्'** दो शब्द प्रयोग किये हैं। एक तो सच्चे शास्त्र। जिसमें से आत्मा की बात वीतराग की दृष्टि-ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति हो, और जिसमें व्यवहार धर्म की सच्ची पहिचान हो, ऐसे सत्शास्त्रों का हमेशा स्वाध्याय करना चाहिए। समझ में आया? घण्टे, दो घण्टे। तुम्हारे क्या कहते हैं? एक घण्टा, दो घण्टा ऐसा कहते हैं न? हमेशा स्वाध्याय चाहिए। बहियाँ हमेशा कैसे घुमाता है?

एक बार भगवानजीभाई के पास गये तो कितनी ही पुस्तकें पड़ी हुई। यह भगवानजी वकील। ऊपर कुर्सी पर बैठे थे। यहाँ पड़ी हुई और यहाँ पड़ी हुई। आहा! कितनी ही पुस्तकें फिराते थे। वह पुस्तकें फिरावे और इस शास्त्र को फिराया किसी दिन? भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा के कहे हुए सत्शास्त्र, हों! वापस व्याख्या यह की। अज्ञान ने अपनी कल्पना से बनाये हुए जगत को अपने स्वार्थ पोसने के, वे शास्त्र नहीं हैं। उसमें इसे विवेक होना चाहिए। जिसमें वीतरागता और निर्दोषता प्रगट (हो ऐसे) कथन हों। जिसमें सदोषता के उत्थापन के भाव हों। ऐसे वीतरागी कथनों के शास्त्र हमेशा उत्तम और **निष्कलंक गुरुओं से प्रसिद्ध किये शास्त्र को पढ़ना चाहिए।** यहाँ तो नकार से लिया है न? वह कोई पढ़ता नहीं, वाँचता नहीं, विचारता नहीं, समय मिलता नहीं। कहो, समझ में आया?

यह मनुष्यों को विद्वान पुरुष... उसे वह **'तेऽन्धाः सचक्षुषोऽपीह' 'मनीषिभिः' 'मनीषिभिः'** है न? **'मनीषिभिः'** अर्थात् विचारक। विचारक अर्थात् ज्ञानी। उसे ज्ञानी अन्ध कहते हैं। **नेत्रधारी होने पर भी अन्धे ही मानते हैं।** क्या कहा, समझ में आया इसमें? जो कोई सत्शास्त्र को नहीं पढ़ते, पढ़ता नहीं, वाँचते नहीं, विचारते नहीं। सद्गुरु प्रगट, भगवान त्रिलोकनाथ और सन्तों-महा आचार्यों कुन्दकुन्दादि महा मुनियों द्वारा कहे हुए शास्त्र पढ़ते नहीं, अभ्यास करते नहीं, पूछते नहीं कि यह क्या? वे अन्ध-अन्धे हैं, विद्यमान आँखें (होने पर भी) अन्धे हैं। यह महिलाओं को लागू पड़ता होगा या नहीं? या इन्हें पूरे दिन पकाना? पकाना और यह करना और धूल करना। निवृत्त हो तो वस्त्र सिलना, वह होवे तो यह खांडणिया करना। यह कहते हैं वह बाद में, पहले यह कर। कहो, सेठी! कभी पन्ना फिराया नहीं। सुनूँगा। घर में पन्ना फिराता नहीं। क्या कहा और क्या इसमें कहा। कहो, समझ में आया?

ऐसा मनुष्यभव मिला और अनन्त काल में श्रेय के साधन क्या हैं, इसे समझने में आया, तथापि उन शास्त्र आदि का कथन-मनन करे नहीं और **उन मनुष्यों को विद्वान...** अर्थात् **'मनीषिभिः'** विचार विद्वान **नेत्रधारी होने पर भी अन्धा कहते हैं।** घर की बहियाँ कैसे खोजता है? कितना हुआ भाई? नौकरों ने तो नामा लिखा परन्तु प्रतिदिन दो-चार दिन में वापस खोज जाए। दो-चार महीने हो जाए तो अन्दर से कहीं पोल निकले। अभी का काल। इसलिए हमेशा घर की बहियाँ खोजता है। इसी प्रकार भगवान के कहे हुए घर की पुस्तकें। समझ में आया? उसे देखो न, 'मोक्षमार्गप्रकाशक', यह तो सुगम शास्त्र है। इसे पढ़ने में कोई व्याकरण या कोई ऐसी की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसका जो अभ्यास न करे, उसके अभाग्य का क्या कहना, ऐसा कहा है। उसका तो महाभाग्य है उल्टा। प्रमाण शास्त्र है। टोडरमलजी का। जिसे खबर नहीं होती। अरे! भगवान! यह तो आचार्य और मुनि जो कहते हैं, उसको सरल शैली से कहा है। वस्तु के स्वरूप का वर्णन निश्चय-व्यवहार ....

कहते हैं, **वस्तु का स्वरूप यथार्थ रीति से शास्त्र से जाना जाता है।** शास्त्र बिना ज्ञात नहीं होता। घर में है यह बात? **किन्तु मनुष्य शास्त्र न तो देखते हैं...** यह नजर में पड़े तो भी उठाता नहीं कि यह क्या है भाई? इसमें लाओ तो सही, पढ़ें कुछ। यह शास्त्र है, शास्त्र। जाओ। घर की बहियाँ खोजनी हो तो बनिया कहे, पन्ना फिरे और सोना झरे। भाई! नवनीतभाई कहते हैं न ऐसा? क्या कहे? उसमें से कितने से लेना और कितनों को देना, कितना अमुक, इस प्रकार पन्ना फिरे ऐसे सोना झरे। यहाँ कहते हैं, शास्त्र का पन्ना फिरा तो उसमें से ज्ञान झरेगा। तुझे सच्चा ज्ञान प्रगट होगा। नहीं पढ़ना शास्त्र, नहीं पढ़ना शास्त्र।

तब और वह कहता है कि शास्त्र... अरे! परन्तु भगवान! तू यह क्या कहता है? चार अनुयोग में कुछ दूसरा कहा होगा। इस चरणानुयोग का तो यह शास्त्र है। यह अधिकार। अधिकार, हों! चलता हुआ अधिकार चरणानुयोग का है। मुनि, गृहस्थाश्रम में चरणानुयोग, उसके पुण्य परिणाम कैसे होते हैं, पाप का छेद होकर, उसका तो यह वर्णन है। चरणानुयोग में पुण्य-पाप का अधिकार। कहो, समझ में आया?

न देखते हैं, न पढ़ते हैं, यह मनुष्य वस्तु के यथार्थ स्वरूप को भी नहीं जानते

हैं। किस प्रकार जाने ? कुछ खबर नहीं होती। **इसलिए नेत्रसहित होने पर भी अन्धे ही हैं। अत: भव्यजीवों को शास्त्र का स्वाध्याय...** और अकेला पढ़ना-पढ़ना नहीं वापस उसका **मनन अवश्य करना चाहिए।** आचार्य एक श्लोक कहकर वापस तुरन्त उससे उल्टा कहते हैं। ऐसा करे, उसे ऐसा होगा और न करे, उसे ऐसा होगा।

गाथा २१

मन्ये न प्रायशस्तेषां कर्णाश्च हृदयानि च।
यैरभ्यासे गुरो: शास्त्रं न श्रुतं नावधारिताम्।।२१।।

अर्थ : आचार्य कहते हैं जिन मनुष्यों ने गुरु के पास में रहकर न तो शास्त्र को सुना है तथा हृदय में धारण भी नहीं किया है उनके कान तथा मन नहीं हैं ऐसा प्राय:कर हम मानते हैं॥२१॥

गाथा - २१ पर प्रवचन

मन्ये न प्रायशस्तेषां कर्णाश्च हृदयानि च।
यैरभ्यासे गुरो: शास्त्रं न श्रुतं नावधारिताम्।।२१।।

ओहो! आचार्य महाराज जंगल में रहकर करुणा करके जगत को कहते हैं। **जिन मनुष्यों ने गुरु के पास में रहकर न तो शास्त्र को सुना है...** समझ में आया ? **'न श्रुतं'** है न ? देखो! **'न श्रुतं नावधारिताम्'** गुरु के पास रहकर जो शास्त्र सुनता नहीं, शास्त्र सुना नहीं **और हृदय में धारण भी नहीं किया है। 'नावधारितम्'** हृदय में ग्रहण किया नहीं। यह शास्त्र क्या कहता है ? गुरु क्या कहते हैं ? निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त। समझ में आया ? वे क्या कहते हैं, यह **सुना नहीं, हृदय में धारण भी नहीं किया उनके कान व मन नहीं है, ऐसा प्राय: कर हम मानते हैं। 'प्राय'** शब्द पड़ा है न ? **'प्रायशस्तेषां'** उसे मन और कान होने पर भी मन और कान रहित कहते हैं। समझ में आया ? सेठी! उसे मन नहीं है, कहते हैं। मन होवे तो मनन चाहिए, कान होवे तो श्रवण चाहिए, ऐसा कहते हैं। मनन और श्रवण दोनों लिये हैं न ? समझ में आया ?

मन होवे, तब तो उसमें क्या कहते हैं, इसका मनन होना चाहिए। कान मिले अन्तिम में अन्तिम इन्द्रिय यह है। चार इन्द्रियाँ अन्तिम और फिर यह अन्तिम। यह मिलती है न अन्तिम? पहली एकेन्द्रय स्पर्शेन्द्रिय, पश्चात् यह जीभ, नाक, आँख और अन्तिम यह। अन्तिम यह होती है। उसे मिली और यदि गुरु के पास कुछ शास्त्र का श्रवण करके... **'न श्रुतं'** लिया है न? पढ़ता नहीं, उसके कान और हृदय अर्थात् मन, हृदय आदि नहीं है। तुझे कान और मन मिले, वह कान और मन नहीं है। **ऐसा प्राय:कर हम मानते हैं।** आचार्य कहते हैं कि ऐसा हम मानते हैं।

कान और मन की प्राप्ति का सफलपना शास्त्र के सुनने से है। दो इन्द्रिय हो गया, ऐसा कहते हैं। तुझे पाँच इन्द्रिय मिली तो भी दो इन्द्रिय जैसा है। मन से मनन करता नहीं, शास्त्र को श्रवण करता नहीं। शास्त्र को सुनता नहीं। विकथा करने बैठे और उसके घर बारोट आया हो बारोट। बारोट को क्या कहते हैं? समझते हो? उसके कुटुम्ब की बात करे तो कहाँ तक बैठे, रात्रि के दस बजे तक बैठे, ग्यारह बजे तक। तुम्हारे पिता ऐसे थे और तुम्हारे पिता ऐसे थे, तुम्हारे पिता पाटण में रहते थे, वहाँ पचास हजार खर्च करके बावड़ी बनायी थी, उस दिन का उनका नाम वहाँ है। धूल में भी नहीं। सुन न अब। उसके पिता की बात सुनने बैठे, पाँच-पच्चीस... यह इसका पिता तीर्थंकर त्रिलोकनाथ धर्मपिता ने कहे हुए शास्त्र, उन्हें गुरु के निकट सुनता नहीं, तो कहते हैं कि हम मानते हैं कि तेरे कान और मन नहीं है।

कान और मन का सफलपना शास्त्र के सुनने से है और उनके अभिप्राय को मन में धारण करने से... देखा! सुनना और वह अवधारण किया है न? शास्त्र क्या कहते हैं, उनका अभिप्राय धारण करना चाहिए। **किन्तु जिन मनुष्यों ने कान पाकर...** कान मिलने पर भी **शास्त्र का श्रवण नहीं करते और मन पाकर उसका अभिप्राय भी नहीं समझता...** अभिप्राय समझता नहीं। हार्द क्या है। शास्त्र को कहने का आशय क्या है, उसे अभिप्राय में नहीं लेता **उस मनुष्यों के कान और हृदय का पाना, न पाना सरीखा ही है।** मिले, नहीं मिलने जैसे हैं। **इसलिए विद्वानों को शास्त्र का श्रवण और उसका मनन जरूर करना चाहिए। जिससे उनके कान और हृदय सफल समझे जावें।** लो! यह तीन बोल हुए। देव पूजा, गुरु सेवा, स्वाध्याय।

चौथा बोल संयम। श्रावक को हमेशा थोड़ा संयम इन्द्रियदमन आदि हमेशा (होना चाहिए)। पूरे दिन भोग, भोग और भोग, ऐसा नहीं होता। श्रावक को हमेशा थोड़ा संयम होता है। यह चौथा बोल कहते हैं। **आचार्य संयम नामक आवश्यक का कथन करते हैं।**

गाथा २२

देशाव्रतानुसारेण संयमो ऽपि निषेव्यते।
गृहस्थैर्येन तनैव जायते फलवद्व्रतम्।।२२।।

अर्थ : धर्मात्मा श्रावकों को एकदेशव्रत के अनुसार संयम भी अवश्य पालना चाहिए जिससे उनका किया हुआ व्रत फलीभूत होवे॥२२॥

गाथा - २२ पर प्रवचन

देशाव्रतानुसारेण संयमो ऽपि निषेव्यते।
गृहस्थैर्येन तनैव जायते फलवद्व्रतम्।।२२।।

धर्मात्मा श्रावकों को एकदेश व्रत के अनुसार... अपने गुणस्थान के अनुसार **संयम भी अवश्य पालना चाहिए।** समझ में आया? भोग की भी उसे मर्यादा होना चाहिए। खाने-पीने की अन्दर में तीव्र गृद्धि की भी मर्यादा होना चाहिए। ऐसे का ऐसा साँड जैसे खाये न। रास्ते में चलते हुए आलू खावे और आलू की भुजिया खावे। समझ में आया? बटाटा समझते हो? आलू, आलू।

मुमुक्षु : आलू की पकौड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आलू की पकौड़ी खाये। यह कहीं सज्जन के लक्षण हैं?

श्रावक को कहते हैं, **अवश्य पालना, जिससे उनका किया हुआ व्रत फलीभूत हो जाए।** (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)